प्रवचन नं. ४६ गाथा-१२ ता. २९-७-७८ शनिवार अषाढ वदी-१० सं.२५०४

समयसार बारहवीं गाथा।

'जो पुरुष अंतिम पाक से उतरे हुए शुद्ध स्वर्ण के समान उत्कृष्ट भाव का अनुभव करते है' जैसे सोना सौ प्रतिशत और सोलहवान का हो, इसप्रकार शुद्धस्वर्ण

समान वस्तु के उत्कृष्ट भाव को आत्मा के उत्कृष्ट भाव को अनुभव करता है। (ध्यान रखो ये हिम्मतभाई ! कहाँ नजर जाती तुम्हारी, यहाँ क्यां कहा जाता है ? इसमें बहुत ज्यादा (चला) गया, बहुत चला गया बहुत।

उत्कृष्ट क्यों कहा ? कि स्वर्ण जैसे सोलहवान का पूर्ण हो, इसप्रकार जिसकी पूर्णदशा प्रगट हो गई केवली की। है ? उन्हें उत्कृष्ट भाव का अनुभव है। सर्वज्ञ परमात्मा... इसमें बहुत फेरबदल है इस गाथा के अर्थ में, इसका अर्थ बहुधा उल्टा करते हैं, अनेक जाति का, अर्थात इसमें फर्क है थोड़ा।

जो पुरुष अंतिम पाक से उतरे हुए शुद्ध स्वर्ण समान, यह तो दृष्टांत है। शुद्ध स्वर्णसमान वस्तु के उत्कृष्टभाव को अनुभवते हैं, अर्थात कि अंतिम दशा केवलज्ञान को प्राप्त हैं, उन्होंने तो प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों की परंपरा से पाच्यमान... प्रथम सम्यग्दर्शन होने पर पहली पर्याय का अनुभव, यह अब उन्हें (केवली को) नहीं। उसी प्रकार बीच की दशा का अनुभव भी केवलज्ञानी को नहीं। ध्यान रखना।

`उन्हें प्रथम द्वितीय आदि अनेक पाकों की परंपरा से पकाये जाते हुये अशुद्ध स्वर्ण के समान जो अनुत्कृष्ट मध्यम,' अनुत्कृष्ट क्यों कहा ? कि सम्यग्दर्शन होने पर प्रथम समय जघन्य अनुभव होता है, दूसरे समय उससे अधिक, मध्यम हो गया, जब केवलज्ञान न हुआ, उसके पूर्व के इस तरफ के समय तक उसे मध्यम कहा जाता है।

क्या कहा यह ? सम्यग्दर्शन हो... शुद्धचैतन्यज्ञान स्वरूप... यहाँ तो यह सर्वज्ञस्वरूप ही प्रभु ध्रुव है। ज्ञायक कहो कि सर्वज्ञ स्वभावी - ऐसा नित्यध्रुव, उसकी जब दृष्टि हुई, उसका स्वीकार एवं सत्कार हुआ तब पहले समय का जो अनुभव (है), उसे जघन्य कहते हैं। परंतु वह तुरंत ही दूसरे समय, तीसरे समय अनुभव होता ही है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्धचैतन्य ज्ञायकभाव, सर्वज्ञ स्वभावी वस्तु, ऐसी दृष्टि होने के पहले समय का जो अनुभव वह असंख्य समय रहता है इसलिए उसे दूसरा तीसरा आदि मध्यमअनुभव उसे हो जाता है। जघन्यता को पारकरके।

यह तो इसमें बहुत विरोध आया है इसलिये अधिक स्पष्ट होता (है)। परंपरा से पकाने में आता है अशुद्धसुवर्ण समान जैसे स्वर्ण अशुद्ध होता, इसप्रकार यह अभी अनुत्कृष्ट मध्यमभाव, जघन्यभाव न लिया, क्योंकि जघन्यभाव तो पहले समय होता है। क्या कहा यह ? शुद्धचैतन्य ज्ञायकस्वरूप है, ऐसी जो दृष्टि और अनुभव हुआ, उसके पहले समय का वेदन तो जघन्य कहलाये। परंतु यह तो आगे बढ़ जाता (है) तुरंत ही उसे दूसरे समय आदि असंख्य समय की वृद्धि उसको होती ही है, समझ में आया ?

बहुत प्रकार आयेंगे, धीरज से समझना।

मध्यमभाव... उसका अनुभव नहीं होता। जघन्य तो सम्यग्दर्शन होने के बाद भी, जघन्य अनुभव तो उसे भी नहीं। समझ में आया ? और इसे उत्कृष्ट अनुभव नहीं होता, क्योंकि सम्यग्दर्शन होने के बाद भी जब तक केवलज्ञान की दशा न हो, तब तक मध्यम दशा का अनुभव है। बात समझ में आती है ?

अर्थात कहा कि अनुत्कृष्ट अर्थात उत्कृष्ट नहीं। जो पहले कहा कि केवली उत्कृष्ट भाव को अनुभवता है। उन्हें यह उत्कृष्ट भाव का अनुभव, मध्यम अनुभववालों को नहीं। समझ में आता है कुछ ? आहाहा ! और यहाँ से जघन्य तो यह है ही नहीं। यह जघन्य प्रथम समय का गिना है, और आस्रवमें जो जघन्य भाव गिना है मूलगाथा में। भाई ! जघनभावे ! यह जघन्यभाव उत्कृष्ट भाव के नीचे जो भाव है उन सभी को जघन्यभाव गिना है।

क्या कहा ? यहाँ जो जघन्यभाव है यह तो सम्यग्दर्शन अनुभव होने का पहला समय है उसे जघन्यभाव कहें, और बाद के भावों को मध्यम भाव कहा, उत्कृष्ट का अभाव और जघन्य तो गया। समझ में कुछ आया ? और मध्यमभाव का अनुभव होने से उस भाव का अनुभव नहीं, किसे ? केवली को, केवली को, अशुद्धस्वर्ण समान जो अनुत्कृष्टभाव उसका अनुभव होता नहीं, किसे ? केवली को।

जो पुरुष अंतिमपाक से उतरे हुये शुद्धस्वर्ण के समान सोलह, क्या कहा ? सोलह (श्रोता :- सोलहवान समान) सोलह क्या कहा ? (श्रोता :- वान) सोलहवान... भूल जाये तुम्हारी भाषा। सोलहवान जब स्वर्ण हो गया उसे फिर मध्यम और अशुद्ध स्वर्ण की जो मध्यमदशा (है) यह उसे होती नहीं उसे तेरहवान और चौदहवान होता नहीं।

इसप्रकार जिसे सर्वज्ञ पूर्णदशा हुई, उसे जघन्य तो नहीं, सम्यक्दृष्टि को भी जघन्य नहीं, जघन्य तो पहले समय हो गया और सर्वज्ञ न हो वहाँ तक की दशा को उत्कृष्ट दशा नहीं उसे, उस अनुष्कृष्ट दशा को मध्यम दशा कहते हैं। इस मध्यम दशा का अनुभव केवली को होता नहीं। समझ में आया ?

इसमें बड़ा झगड़ा है अर्थात अभी थोड़ा अभी आया है, कि केवली को शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। उन्हें किस दिन शुद्धनय था ? कि तुम उन्हें (जाना हुआ प्रयोजनवान कहते हो) शुद्धनय तो सातमें से शुद्धनय होता है एवं चौथे, पांचवे, छठवें तक व्यवहार होता है।

केवली को शुद्धनय तुम जानना कहते हो तो उन्हें नय कहाँ ? - ऐसा कहते हैं (यह लोग) - ऐसा कहते हैं, धीरज से सुनो, धीरज से, बहुत समझने जैसी सूक्ष्मबात है, जैसे जैसे विरोध आता (होता) उस उस प्रकार स्पष्टीकरण (होता है) यह मोतीचन्द्र

अभी लेखों में - ऐसा कहते हैं। फलटन के है कोई वकील। - ऐसा कि शुद्धनय को जानने का कहा है, यह शुद्धनय केवली को कहाँ है ? केवली को तो नय (नहीं) उन्हें तो पूरणता हो गई है शुद्धनय कहाँ है ? शुद्धनय तो निचली दशा में सातमें से ऊँची दशा में शुद्धनय होता, और चौथे, पाँचवें, छठवें तो व्यवहारनय होता है। (श्रोता :- चौथे से शुद्धनय शुरू हो जाता है) शुद्धनय यहाँ से (चौथे से) नहीं, उन्हें इसका निषेध करना है न इसका ? आहाहा ! शुद्धनय वहाँ से (चौथे से) नहीं।

आहाहा ! कारण कि... - ऐसा तुम कहते हो, यहाँ कहेंगे देखो !

उसका अनुभव होता नहीं, शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से अर्थात कि शुद्धद्रव्य को अनुभव करनेवाला होने से, कहनेवाला होने से... समझ में कुछ आया ? सूक्ष्म भाषा है बापू ! यह तो अध्यात्म मार्ग अंदर बहुत सूक्ष्म है। इसे पकड़ना समझना यह बहुत पुरुषार्थ मांगता है।

यहाँ शुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से अर्थात कि शुद्धद्रव्य को जाननेवाला होने से पूरा, जिसने अचलित अखण्ड एकस्वभाव एकभाव प्रगट किया है। जिसने अचलित, अखण्ड एक स्वभाव भावरूप, मध्यमभाव था वहाँ तभी एक स्वभाव नहीं था, समझ में आया ? यह तो एक स्वभावभाव सर्वज्ञ हुये। एक स्वभावभाव एकभाव प्रगट किया है। एकभाव प्रगट किया है - ऐसा शुद्धनय ही... यहाँ विरोध है। केवली को तुम शुद्धनय कहो तो वहाँ नय कहाँ है ? वहाँ यह - ऐसा कहते हैं, अतः यह शुद्धनय है यह सातवें, आठवें, नौंवें में लागू होता (है) चौथे, पांचवें, छठवें में शुद्धनय लगाओ यह काम नहीं आये, उसी प्रकार शुद्धनय केवली को लगाओ यह भी काम नहीं आये - ऐसा वह कहते हैं। एक वकील है, बड़ा लेख आया है।

यह तो सब झगड़े चलते ही हैं... सभी इस बारहवीं गाथा की तो... आहाहा ! ***यहाँ तो कहते हैं कि शुद्धस्वर्ण सोलहवान समान, जिसने आत्मा का शुद्ध पूर्ण स्वभाव सर्वज्ञ पूर्ण आनंद जहाँ प्रगट हो गया, भाव प्रगट हो गया, जो एक स्वभाव भाव अचलित-अखण्ड प्रगट हो गया, उसे तो शुद्धनय ही है... शुद्धनय का अर्थ यह कि अब इन्हें शुद्धनय 'करना' रहा नहीं।*** भाई ! आस्रव (अधिकार)में आता है न ? केवली को शुद्धनय की पूर्णता हो गई - ऐसा कहा है। आस्रव अधिकार। सुनना, इस बारहवीं गाथा को... बहुत झगड़ेवाली (कहते) है भाई ! उस टीका के बहुत प्रकार इसमें से निकलेंगे।

प्रथम तो आस्रव में जघन्यभाव कहा। वह जघन्यभाव कौन ? कि उत्कृष्ट (तो) केवलज्ञानी का भाव नहीं, और मध्यम है उसे यहाँ जघन्य कहा। दूसरी बात... भावार्थ में शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान में होती है - ऐसा लिखा है। दो जगह है न ?

है न इसमें ? आस्रव आस्रव... देखो ! पेज यहाँ है गुजराती दोसौ चौराशी, एक सौ बीस, कलश है, पेज का फर्क हो तो एक सौ बीस कलश उसमें नीचे है। एकदम नीचे है।

साक्षात् शुद्धनय तो केवलज्ञान होनेपर होता है, है ? अंतिमपंक्ति इसमें अंतिम पंक्ति है। एक सौ बीस कलश के बाद... भावार्थ होने के बाद साक्षात् शुद्धनय तो... देखो ? शुद्धनय साक्षात् तो केवलज्ञान होने पर होता है।

यह किस अपेक्षा कहा ? एक तरफ - ऐसा कहा कि त्रिकाली भूतार्थ वह शुद्धनय और यहाँ साक्षात् शुद्धनय केवलज्ञान में होता है - ऐसा कहा, इसका अर्थ ? कि शुद्धनय का अभी इसमें आश्रय लेने जैसा था यह आश्रय वहाँ है नहीं, अर्थात वहाँ शुद्धनय पूर्ण हुआ इसप्रकार। समझ में आया इसमें ? आहाहा ! ऐसे बहुत से भंग पड़ते यह सभी उठाये हैं इस बारहवीं में... केवली को उन्हें शुद्धनय कहाँ है ? अतः शुद्धनय जाना हुआ, जाना हुआ तुम कहते हो वह शुद्धनय इन्हें जानना है ?

हाँ ! इन्हें शुद्धनय जानना है समझ में आया ? एक सौ तेतालीस गाथा में कहा न ? मूलगाथा में फिर श्रुतकेवली के साथ तुलना की है न ? वहाँ भी शुद्धनय जानतें हैं इतना। एक सौ तेतालीस है न ? एक सौ तेतालीस गाथा, कर्त्ता कर्म (अधिकार) की न ? अंतिम एक सौ तेतालीस हाँ ! देखो ! यह एक सौ तैतालीस गाथा। जिसप्रकार केवली भगवान विश्व के साक्षीपने के कारण... एक बोल, है ? दूसरा बोल। अब दूसरे बोल पर जोर है यहाँ, श्रुतज्ञान के अवयवभूत ऐसे जो व्यवहार निश्चयनय के पक्ष उसके स्वरूप को ही केवल जानते (है) है ?

क्या कहते हैं ? केवली, व्यवहारनय एवं निश्चयनय के पक्ष के स्वरूप को 'ही' मात्र जानते अर्थात शुद्धनय (को) जानते हैं इसका अर्थ यह कि उन्हें शुद्धनय का विषय पूर्ण हो गया अर्थात अब जानना ही रहा बस - ऐसा।

धीरज से समझना बापू ! यह गाथा तो बहुत विवादास्पद है न ?

क्या कहा ? केवली भगवान विश्व के साक्षीपने के कारण श्रुतज्ञान का अवयव श्रुतज्ञान यह प्रमाण है तथा निश्चय और व्यवहार उसके अवयव है, भाग हैं, इसलिये अवयवभूत - ऐसा व्यवहार और निश्चय के पक्ष उनके स्वरूप के केवल जानते है, कहो अब नय कहाँ है वहाँ ? परंतु जानते है इसका अर्थ है यह कि मात्र जानना रह गया इसप्रकार। आहाहा ! समझ में आया ? है ? ***केवली भी निश्चय व्यवहारनय को जानते हैं, केवली भी व्यवहारनय और निश्चयनय उसके स्वरूप को जानते है - ऐसा कहा।***

अब, वहाँ कहीं निश्चय व्यवहारनय है नहीं। इसलिये उसे जानते हैं ज्ञान में

जानते है, जैसा था वैसा जाना इसका नाम व्यवहार और निश्चय को जाननेवाला कहा। अरे ! एक बात। यहाँ कहा कि शुद्धनय केवलज्ञान होने पर होता है। आस्रव (अधिकार में) कहा न ? और यहां कहा, अपने इस चलते अधिकार में... क्या कहा यहाँ देखो ! अनुत्कृष्ट भाव, उसका अनुभव केवली को होता नहीं। इसलिये शुद्ध द्रव्य को कहनेवाला - ऐसा शुद्धनय ही है ? यह शुद्धनय ही, सबसे ऊपर की एक प्रतिवर्णिका स्वर्णपने के समान होने से सोलहवान समान होने से जाना हुआ प्रयोजनवान। शुद्धनय ही जाना हुआ प्रयोजनवान है।

अब यहाँ विरोध करते हैं। उन्हें शुद्धनय कहाँ है कि जाना हुआ प्रयोजनवान है ?

अरे भाई ! जानने में उन्हें सभी आया इसमें जानने योग्य जाना बस इतना। यहाँ तो यही कहा, शुद्धनय तो जाना हुआ, प्रयोजनवान है - ऐसा कहा। नय उन्हें होती नहीं, परंतु जाननेवाला हैं - ऐसा कहा उसने बस इतना। शुद्धनय को भी जाननेवाले हैं। आहाहा ! समझ में आता है ?

इसमें झगड़ा क्या है ? कि इस बारहवीं गाथा में जो व्यवहार कहा, यह तो चौथे, पाँचवे, छठवें तक का व्यवहार और आगे शुद्धनय कहा यह तो सातवें के बाद शुद्धनय (होता) और केवली को शुद्धनय होता नहीं - ऐसा कहते हैं। भाई ! उसका यहाँ स्पष्टीकरण - ऐसा है कि शुद्धनय का पूर्ण स्वरूप... ***शुद्धनय तो भूतार्थ को कहा है त्रिकाली को और त्रिकाली के आश्रय से दृष्टि हुई सम्यग्दर्शन और अनुभव स्थिरता इसे भी शुद्धनय कहा जाता है चौदहवीं गाथा में और यहाँ भी केवलज्ञान में भी... शुद्धनय की पूर्णता हो गई आश्रय लेना उसे भी शुद्धनय जानता है - ऐसा कहा जाता है।*** आहाहाहाहा ! समझ में आया ? रात को प्रश्न करना !

तीन बात हुई। प्रथम तो उत्कृष्ट स्वर्ण का जिसे अनुभव है उसे मध्यम स्वर्ण का अनुभव नहीं, उसीप्रकार जिसे उत्कृष्ट केवलज्ञान का अनुभव है उसे मध्यमदशा का अनुभव नहीं। क्योंकि इसे एकरूप अखण्डदशा प्रगट हो गई है, इसलिये शुद्धनय उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

और यहाँ अनुत्कृष्ट शब्द लिया, लिया न ? क्योंकि जघन्य, मध्यम भाव तो इसे नहीं। परंतु सम्यग्दृष्टि जीव को, अभी बारहवें तक मध्यमभाव है। पूर्ण हो गया तेरहवें, तब अब मध्यमभाव रहा नहीं, उत्कृष्ट भाव की दशा हो गई। उसे शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान - ऐसा कहा। शुद्धनय वहाँ ही होता है उसे शुद्धनय नीचे नहीं होता - ऐसा नहीं। शुद्धनय तो चौथे से लागू होता है।

त्रिकाली भूतार्थ ज्ञायक सर्वज्ञ स्वरूपी प्रभु - ऐसा सर्वज्ञ स्वरूपी सर्वज्ञस्वभावी जो ध्रुववस्तु इसका आश्रय लिया, वहाँ पहले समय जो दर्शन प्रगटा, ज्ञान प्रगटा

यह जघन्य भाव कहने में आता और यह एक समय बाद रहता नहीं फिर तुरंत दूसरे समय, तीसरे समय, चौथे समय उसकी दशा बढ़ जाती है। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्मबात है। यह तो वह लोग जैसे विरोध करते जाते हैं न इसीप्रकार यहाँ ज्यादा स्पष्टीकरण होता जाता है।

एक तो - ऐसा कहते हैं कि ``शुद्धनय जाना हुआ वहाँ कहा तब उनको नय नहीं। जाना हुआ (कहा) अतः गलत बात है, उन्हें नय नहीं। नय तो शुद्धनय किसे होता ? सातवें, आठवें, नौवें इन्हें शुद्धनय होता केवली को शुद्धनय नहीं होता। चौथे, पाँचवें, छठवें शुद्धनय नहीं होता, चौथे, पाँचवें, छठवें व्यवहार होता केवली को शुद्धनय नहीं होता, बीच की दशा में शुद्धनय होता है'' - ऐसा नहीं। आहाहा !

शुद्धनय की शुरूआत तो भूतार्थ का आश्रय से हुआ, सम्यग्दर्शन की दशा, जिसे ध्रुव... ज्ञायकभाव इसप्रकार अकेला ज्ञानभाव, अन्य प्रकार कहें तो, सर्वज्ञस्वभावभाव, सर्वज्ञ स्वभावभाव, ध्रुवभाव, ज्ञायकभाव - ऐसा सर्व... ज्ञ स्वभाव। आहा ! ***इसमें जब दृष्टि लगी तभी से पहले समय इसका वेदन उत्पन्न हो गया, परंतु यह पहला समय टिकता नहीं, तुरंत दूसरे समय तीसरे समय इसका मध्यम वेदन हो (जाता है) यह मध्यम वेदन कहाँ तक होता ? कि उत्कृष्ट केवली नहीं होंता, तब तक की दशा में मध्यम होता (है), केवल(ज्ञान) हुआ वहाँ तक तो मध्यमवाले को शुद्धनय का आश्रय है। अभी पूर्ण वस्तु का आश्रय है, यह आश्रय केवली का छूट गया अर्थात केवली शुद्धनय को जानते हैं।*** इसप्रकार कहा जाता है।

आहा...! धीरे-धीरे समझना इस विषय की पहली बार शुरूआत होती है। - ऐसा स्पष्टीकरण प्रथम बार आया, विरोध बहुत (आया) न, यह कहते है शुद्धनय चौथे-पाँचवें-छठवें तो `व्यवहार देशिदा' भी आया न इसमें। व्यवहार का उपदेश करना, किसे ? चौथे-पाँचवें-छठवें को। आहाहा ! अरे भगवान ! क्या कहते हो प्रभु ! तुम क्या कहते हो भाई ? आहाहा ! भगवान हैं यह भी...! आहाहा ! पर्याय में भूल होती है भाई ! आहाहा !

शुद्धनय नीचे नहीं होता अकेला व्यवहार ही हो... तब यह व्यवहार निश्चय बिना व्यवहार हो ही सके नहीं। निश्चय स्व शुद्ध त्रिकाली भूतार्थ वस्तु है उसका आश्रय हो गया है, सम्यग्दर्शन होते ही इसका आश्रय शुद्धनय का यह वस्तु त्रिकाल है उसे भी शुद्धनय कहते है और उसका आश्रय करनेवाली पर्याय को भी शुद्धनय कहते है। आहाहाहा ! और प्रगटी दशा को भी शुद्धनय कहते है और पूर्ण हुई दशावाले को शुद्धनय पूरण हो गई - ऐसा कहने में आये। अरे ! हीराभाई ! यह प्रभु का मार्ग अरे प्रभु आहा ! सर्वज्ञ रहे नहीं, लोगों ने कल्पना से मार्ग बिगाड़ दिया बापू !

मार्ग - ऐसा नहीं भाई। आहाहा !

यहाँ जघन्यदशा क्यों नहीं ली ? अनुत्कृष्ट लिया क्यों ? वह एक समय की दशा समकित के असंख्य समय, (इसमें) में तो बढ़ ही गयी है अंतर, अर्थात जघन्यदशा अब इसे रही नहीं। आहाहा ! हाँ ! और केवलज्ञान दशा हुई नहीं, इसलिये उसे अनुत्कृष्ट मध्यमदशा कहा जाता है। मोहनलाल जी ! समझ में आता है कि नहीं ? यह तो मार्ग बापू, सर्वज्ञ त्रिलोक नाथ ! यह भी दिगम्बर दर्शन, आहाहाहा ! ऐसी बात कहाँ है, कहाँ ? परम सत्य का उद्घाटन करनेवाली है। `यह' (बात) आहाहा !

एक तो यहाँ कहा कि मध्यमभाव, तो इसका अर्थ यह हुआ कि समकित होनेपर, जघन्य भाव होता नहीं क्योंकि पहले समय जघन्य होता है और तुरंत ही दूसरे समय मध्यम भाव हो जाता है और यहाँ जघन्य लिया नहीं यह मध्यम है इसे आस्रव अधिकार में जघन्य कहा है। भाई ! `जहण' भाव परिणमन। जहाँ तक धर्मी जीव को उत्कृष्ट भाव का परिणमन नहीं, तब तक जघन्य भाव है - ऐसा कहने में आया है। अभी इसे कमी है न, कमी है न ! आहाहा !

यह जघन्यभाव एक समय का है, वह नहीं। उत्कृष्ट भाव नहीं, उससे नीचे है इसे जघन्यभाव... जो यहाँ मध्यम कहा उसे वहाँ जघन्य कहा। आहाहा ! अब यहाँ तो - ऐसा कहना है कि शुद्धनय कहनेवाला होने से है न ? अर्थात इन लोगों को विरोध उठता है। शुद्धनय कहनेवाला है परंतु (शुद्धनय) केवली को कहाँ है वह कहीं ? - ऐसा कहते हैं।

परंतु... यहाँ तो शुद्धनय कहनेवाला होने से अर्थात् शुद्धनय का स्वरूप वास्तविक होने से इसप्रकार; कहनेवाली तो `बंधकथा' - ऐसा शब्द आता है, परंतु अंदर `बंधभाव' बताना है। इसप्रकार यहाँ `शुद्धनय कहनेवाला का अर्थ कि शुद्धनय जिसे होने पर, जिसे अचलित पूर्ण हो गया उसे अचलित अखण्ड एक स्वभावरूप एकभाव प्रगट किया है। आहाहा ! सर्वज्ञ परमात्मा को तो अस्खलित एक स्वभावभाव प्रगट हो गया है। - ऐसा शुद्धनय, देखा ? प्रगट हुआ है - ऐसा शुद्धनय...। प्रगट तो केवलज्ञान हो गया है। पूर्णदशा। परंतु उसे अब यहाँ शुद्धनय का आश्रय करना रुक गया, अर्थात कि शुद्धनय पूरा प्रगट हो गया - ऐसा कहा जाता है।

(श्रोता :- शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान हो गया) यह, यह भी जाने हुये का यह कहते हैं कि छद्मस्थ को जाना हुआ हो, केवली को जाना हुआ नय कहाँ से हो - ऐसा कहते हैं। (श्रोता :- केवली तो सभी जानते) परंतु कहा न एक सौ तेतालीस में बताया न... विश्व के साक्षीपने के कारण निश्चय-व्यवहारनय को जानते हैं अब निश्चय व्यवहानय को जानते हैं अर्थात वहाँ निश्चय व्यवहारनय है - ऐसा नहीं

परंतु... जैसे दूसरों को जानते इसीप्रकार निश्चय व्यवहार को भी जानते हैं भाई ! आहाहाहा ! ऐसी बातें है बापा ! वीतराग मार्ग आहाहा !

यहाँ शुद्धनय को कहनेवाला होने से है न ? अतः यह लोग - ऐसा लेते है कि शुद्धनय को कहनेवाले होने से... जो साधते हैं उसे यह शुद्धनय है सातवें में आठवें इत्यादि... उन्हें शुद्धनय... कि ध्यान में जब हो तब...

ऐसा शुद्धनय ही जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा ! इसका अर्थ यह कि नयपना वहाँ छूट गया है अब और इसलिये - ऐसा भी लिया कि शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान होने पर होती है। आया न यह ? आस्रव (अधिकार) में दो जगह आया न दोनों जगह यह है। इस पेज पर इस तरफ, आहाहा ! भाई ! किस अपेक्षा है भाई- ऐसा जानना चाहिए। यों खीचातानी करें बापू - ऐसा न चले। प्रभु का मार्ग यह अनेकांत जो है, इसे इसप्रकार जानना चाहिए। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि सोलहवान का सोना जिसे पूर्ण हो गया उन्हें अब तेरह चौदहवान होता नहीं। इसीप्रकार जिसे पूर्णस्वभाव शुद्धनय का पूर्णभाव प्रगट हो गया, उसे अब कहीं स्व का आश्रय लेना - ऐसा रहता नहीं। अतः शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा जाता है। हसमुखभाई ! यह तुम्हारे व्यापार, व्यापार से यह जाति ही अलग है वहाँ कहीं सुनने मिले - ऐसा नहीं वहाँ अकेले करोड़ो रुपया और ऐसे रुपया और धूल - ऐसी बातें बहुत करते हैं लोग। आहाहा !

यह महाप्रभु ! अनंत-अनंत लक्ष्मी का भंडार भगवान है। आहाहा ! इसका आश्रय करना, इस का अर्थ शुद्धनय का आश्रय किया और इसके आश्रय उसे शुद्धनय का अंश प्रगटा और पूर्णशुद्धनय केवली को प्रगटा। आहा ! अर्थात कि अब उन्हें आश्रय करना शेष रहा नहीं। आहाहा !

बीच की दशावालों को मध्यमदशा कही, अनुत्कृष्ट, उत्कृष्ट नहीं अर्थात मध्मय। जिस दशा को आस्रव अधिकार में जघन्यदशा कहीं। भाई ! इस दशा को यहाँ मध्यम कहा। इसे जघन्य क्यों लिया ? कि केवलज्ञान जब तक हुआ नहीं। तब तक जघन्यभावरूप परिणमन है, तब इसे अभी रागादिकभाव है अतः उसे बंध है। बिलकुल बंध नहीं - ऐसा जो कहा था, ज्ञानी को बंध ही नहीं - ऐसा जो कहा था यह अपेक्षा से कहा था। परंतु जहाँ तक जघन्य भावरूप परिणमता है वहाँ तक भी अंदर अभी राग का भाव है अर्थात बंधन है। पूर्ण केवलज्ञान होनेपर जघन्यभाव अर्थात मध्यम भाव छूट गया और पूर्णभाव हो गया उसे तो कहीं थोड़ा भी बंधन है नहीं। यह तो निरास्रवी है।

अरे ! - ऐसा सभी याद कितना रखना ? देवीलालजी ! ए गोविंदरामजी !

परमसत्य है प्रभु। क्या करें ? (श्रोता :- यह मूलबात आ गई। छद्मस्थ को आश्रय है। केवली को आश्रय नहीं, मात्र जानते (है)। जानते बस ! बस ! यह जानते है केवलीप्रभु ! जैसे (केवली) सभी जानते है इसीप्रकार श्रुतज्ञान का अवयवभूत निश्चय और व्यवहार उसे वह जानते हैं - ऐसा आया न, एक सौ तेतालीस गाथा। निश्चय और व्यवहार दोनों को जानते हैं - ऐसा कहा वहाँ। यहाँ शुद्धनय को जानते हैं - ऐसा कहा।

भाई क्या अपेक्षा है बापा ! आहाहा ! वहाँ निश्चयनय और व्यवहारनय को जानते हैं - ऐसा कहा एक सौ तेतालीस गाथा यहाँ शुद्धनय को जानते है - ऐसा कहा। भाई ! वहाँ पूरा जानते है, अतः सभी जानते हैं - ऐसा कहा और यहाँ अभी व्यवहार शेष रहा है, उसे बताने... शुद्धनय पूर्ण हो गई है, इसे शुद्धनय जानता हैं - इसप्रकार कहा जाता है धीरे-धीरे समझना बापू !

(श्रोता :- जाना हुआ प्रयोजनवान है अर्थात ?) जानते अर्थात बस जानते हैं, अब नय नहीं, जैसे सभी को जानते हैं उसी प्रकार नय के भाव को भी जानते हैं। नय-मय उन्हें नहीं अब नय तो... (वहाँ) प्रमाणज्ञान हो गया। आहाहाहा !

बड़ा विरोध अभी यह... (मानते है कि) व्यवहार, व्यवहार से हो न - ऐसा सिद्ध करना है न, अतः चौथे पाँचवें छट्ठे में अकेला व्यवहार होता है, `व्यवहारदेसिदा' (कहा है न) उसे उपदेश व्यवहार का करना उसे निश्चय का नहीं, आहाहाहाहा ! प्रभु तुम क्या करते हो भाई ! - ऐसा न चले, परमात्माका विरह पड़ा, केवली रहे नहीं - ऐसा अर्थ न हो प्रभु ! आहाहा ! उनका जो आशय है भगवान का, उसी प्रकार इसका अर्थ होना चाहिए। आहाहाहाहा !

ऐसा शुद्धनय ही, इसका निष्कर्ष यहाँ है, वह तो दृष्टांत कहा। सबसे ऊपर की एक वर्णिका समान अर्थात सोलहवान ! - ऐसा शुद्धनय ही जाना हुआ प्रयोजनवान है।

समझ में आता है बापू ! समझ में आये - ऐसा है धीरज से समझो ! यह तो वीतराग मार्ग है भाई ! आहाहा ! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ! उनके यह कथन हैं। आहाहा ! इसे संत प्रसिद्ध करते हैं, कि जिसे सोना (में) मध्यमपना जिसका निकल गया और सोलहवान का जिसे हो गया, इसप्रकार ***जिसने शुद्धनय के विषय (का) आश्रय लिया था और अब आश्रय लेना बंद हो गया, उसे शुद्धनय अकेला जानने लायक है - ऐसा हो गया।*** आहाहाहा !

थोड़ी अटपटी बात है, परंतु है बहुत सरल हाँ ? आहाहा ! चेतनजी ! (श्रोता :- बहुत निकाला आपने तो इसमें से) इसमें है - ऐसा। आहा ! बारहवीं गाथा का विरोध तो पहले से चला आता है हमारा। चौरानवें में नटु आया था कपूर (भाई) का, यहाँ...

अरे वहाँ से शुरू किया था उसने। अरे प्रभु ! तुम्हारा समयसार कैसा ? और तुम बारहवीं गाथा का आधार दो भाई ! इसके अर्थ तो तुम किस प्रकार समझते हो ? स्थानकवासी, यह देरावासी, इसमें निकालते देखो, बारहवीं गाथा में कहा कि - ऐसा करना - ऐसा करना - ऐसा करना, करना करने का अर्थ ही यह है कि होता है, उसे जानना वहाँ - ऐसा इसका अर्थ है। आयेगा अभी नीचे अर्थ आयेगा।

वह लोग कहते हैं कि शुद्धनय चौथे, पाँचवें, छठवे होता ही नहीं, अन्यथा यह व्यवहार का उपदेश किसे करना ? अब आयेगा। जिसे निश्चय हो गया है, उसे व्यवहार का उपदेश की आवश्यक्ता क्या ? व्यवहार जिसे अभी निश्चय हुआ नहीं उसे व्यवहार के उपदेश की आवश्यक्ता है - इसप्रकार यह कहते हैं। यहाँ - ऐसा नहीं प्रभु ! व्यवहारदेसिदा शब्द तो पद्य में शब्द लिखने में आया है। परंतु स्वयं अर्थ कहेंगे स्वयं यहाँ कि आत्मज्ञान हुआ है, ***शुद्धचैतन्य स्वरूप के अवलम्बन से, अब यह तो निश्चय हुआ, परंतु इसकी पर्याय में अशुद्धता शेष है, और शुद्धता में कमी है, उसे जानना, उस नय को क्या कहना ? कि इस नय को व्यवहारनय कहना।***

यह व्यवहारनय उस समय उस उस समय, जितना शुद्ध अंश रहा यहाँ और अशुद्ध का अंश, उस उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। दूसरे समय शुद्धता का अंश बढ़ता है, अशुद्धता का अंश घटता है, उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। तीसरे समय शुद्धता का अंश बढ़ता है, अशुद्धता का अंश घटता है उस समय यह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा ! ऐसी सूक्ष्म बात ! बापू ! क्या हो ? अरे प्रभु ! तुं... विरह... आहाहा !

अब, परंतु... अब यह बात तो ली... ***पूर्णदशा हो गई, उसे शुद्धनय जानने लायक है अर्थात इसे शुद्धनय का विषय है यह अब कहीं रहा नहीं। आश्रय करना रहा नहीं। पूर्ण आश्रय हो गया अर्थात शुद्धनय जानने लायक है - ऐसा कहने में आया।*** आहाहाहाहा ! समझ में आया ?

`परंतु जो पुरुष प्रथम, द्वितीय आदि अनेक पाकों की परंपरा से पच्यमान अशुद्ध स्वर्ण समान... देखा ?' सोने को पहला ताप दें प्रथम, शुद्ध करने पहला, द्वितीय आदि अनेक पाकों की परंरा से पच्यमान पका हुआ, `अशुद्ध स्वर्ण की भाँति जो अनुत्कृष्ट मध्यमभाव, उसे अनुभवते है।' सम्यग्दृष्टि को, जब तक पूर्ण दशा का अनुभव नहीं, तब तक इसे जघन्यका भी नहीं और उत्कृष्ट का भी नहीं, कारण कि जघन्य तो पहले ही बीत गया है, उसे उत्कृष्ट है नहीं, मध्यमभाव का अनुभव है। आहाहाहा !

अरे रे ! जिसका अभी ज्ञान भी सच्चा न मिले प्रभु ! वह किसकी शरण जायेगा भाई ! आहाहा ! समझ में आया ? शरण तो चैतन्यस्वरूप है अंदर पूर्ण ! जो सर्वज्ञ

स्वरूपी है `ज्ञ' स्वरूपी है सर्वज्ञस्वरूपी है, `ज्ञ' धातु (अर्थात) ज्ञान को धारण किया हुआ तत्त्व है, अकेला तत्त्व। आहाहाहा ! उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, उसका आश्रय करने से चारित्र होता है। उसका आश्रय जब किया तब जघन्य आश्रय तो बीत गया, अब मध्यम में वर्तता है। सोना जिस प्रकार अभी तेरहवान और चौदहवानवाला रहता है, तब तक सोलहवान का हुआ नहीं। इसीप्रकार जब तक सम्यग्दृष्टि, अपने स्वभाव का आश्रय लेकर मध्यमभाव में वर्तता है, जघन्य भाव तो तुरंत बीत गया वह। आहाहाहा ! समझ में आया ?

अनुत्कृष्ट भावने उसे अनुभवता है। देखा ? `उन्हें अंतिम ताप से उतरे हुए शुद्धस्वर्ण के समान उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं होता।' जैसे सोना सोलहवान का नहीं, इसीप्रकार इसे पूरणभाव प्रगटा नहीं। बीच की दशा में है। आहाहा ! साधक दशा में जघन्य भाव बीत गया है, उत्कृष्ट भाव है नहीं, मध्यम भाव में वर्त रहा है। आहाहा ! (श्रोता :- यहाँ शुद्धोपयोग और शुभोपयोग दोनों साथ में है ?) है, साथ में है। पूर्ण शुद्ध नहीं वह अशुद्धता है न साथ में। साधक है वहाँ बाधकपना विद्यमान है न साथ में। तब तो उसे मध्यमभाव कहा। राग अभी है कि नहीं ? अरे ! दशवें गुणस्थान के अन्त तक राग है और बुद्धिपूर्वक राग छठवें तक है और अबुद्धिपूर्वक छठवें तक है सातवें में अकेला अबुद्धिपूर्वक है, वह दसमें तक बहुत लम्बी बातें बापू ! तत्त्व की कों ऐसी है। आहाहा !

`अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से, उत्कृष्ट भाव का अनुभव नहीं होता इसलिये अशुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से, जिसने भिन्न-भिन्न एक-एक भाव स्वरूप अनेक भाव दिखाये हैं।' देखा ?

यह अशुद्धद्रव्य अर्थात कि अभी अशुद्धपरिणति है और शुद्ध भी है। शुद्ध भी है मध्यम की, और अशुद्धता भी साथ में है। ऐसे अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाले होने से, जिसने भिन्न-भिन्न एक-एक भाव स्वरूप अनेकभाव दिखाये (है), उसमें क्या था ? एक स्वभाव का एक भाव प्रगट किया है - ऐसा था। जिसने अचलित अखण्ड एक स्वभाव रूप एक भाव प्रगट किया, यह उत्कृष्ट (भाव) और मध्यम में ? आहाहाहा ! ***अशुद्धद्रव्य को कहनेवाला होने से द्रव्य को अशुद्ध क्यों कहा ? द्रव्य तो अशुद्ध है ही नहीं। परंतु उसकी पर्याय अभी अशुद्ध है उसे, शुद्धता थोड़ी है और अशुद्धता भी है, इसलिये अशुद्धद्रव्य, दूसरे के कारण नहीं, परंतु यह स्वयं के कारण द्रव्य अंश मलिन है, निर्मल भी साथ में है।*** आहाहा ! ऐसी बात है।

ओहो ! प्रभु का मार्ग है वीरों का... वहाँ मध्यस्थ जीवों का काम है। आग्रह पकड़नेवालों का यहाँ काम नहीं, बापू, यहाँ। आहाहा ! ऐसे जीव को भिन्न-भिन्न एक-

एक भाव स्वरूप, देखा ? शुद्धता का अंश है, इसके साथ अशुद्धता भी है। आहाहा ! दूसरे समय भी शुद्ध का अंश कुछ बढ़ा, फिर भी अशुद्ध का अंश घटा परंतु अशुद्धता साथ में है, ऐसे भिन्न-भिन्न अनेक भावों को बतानेवाला होने से... आहाहा ! है ? भिन्न-भिन्न एक-एकभाव स्वरूप अनेकभाव, एक-एकभाव स्वरूप अनेकभाव। आहाहा ! जो अंदर पहले समय में जो शुद्धता का अंश है और अशुद्धता है, उसकी जगह दूसरे समय शुद्धता का अंश बढ़ा और अशुद्धता घटी इसप्रकार एक-एकभाव भिन्न-भिन्न ही है... आहाहा ! एक-एक भाव स्वरूप अनेकभाव दिखाये हैं - ऐसा व्यवहारनय विचित्र अनेक वर्णमाला समान होने से, सोने को जैसे आंच देने से, भिन्न-भिन्न वर्ण रंग दिखते (है) न ! सोने का रंग दिखता है, उसमें अनेक प्रकार की अशुद्धता, और शुद्धता के अंश अनेक प्रकार के दिखते हैं। ***यह शुद्धता के अंश है, यह भी व्यवहार का विषय है। आहा ! पर्याय है न ! समझ में आया ? आहाहा ! गजब बातें है!!***

इसलिये अशुद्धद्रव्य को कहनेवाली होने से, अर्थात कहनेवाली होने से अर्थात ? अशुद्ध द्रव्य की दशा होने से, उसमें - ऐसा आया था न, अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से भाई ! ऊपर - ऐसा आया था। `कहनेवाले होने से' उसका आशय क्या कहना ? अशुद्ध द्रव्य, पूर्ण होने पर इसप्रकार यहाँ अशुद्ध द्रव्य को कहनेवाला होने से, अर्थात अशुद्ध द्रव्य की अवस्था होने से... द्रव्य में निर्मलता भी प्रगटी है और कुछ मलिनता भी साथ में है। आहाहाहा ! - ऐसा व्यवहारनय... वह तो - ऐसा कहते हैं कि चौथे, पाँचमें, छठवें (में) तो व्यवहार ही है। अरे भगवान ! परंतु, व्यवहार निश्चय बिना व्यवहार होता नहीं। (श्रोता :- दोनों एक साथ होते है !) आहाहा ! लोगों को व्यवहार से लाभ होता है यह सिद्ध करना है न, अतः इसका अर्थ यह करते हैं, बापू ! - ऐसा नहीं भाई !

पहले ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ है वही शुद्धनय है - ऐसा कहा। फिर पुनः - ऐसा कहा कि भूतार्थ का आश्रय करे यही सम्यग्दर्शन - ऐसा कह कर भेद डाला, परंतु यह आश्रय करे तब उसे सम्यग्दर्शन होता है, वहाँ से तो शुरूआत की। अब यह तो निश्चय का विषय उसने जाना, अब इसकी पर्याय में कुछ अपूर्णता अशुद्धता है कि नहीं ? जैसे द्रव्य इसप्रकार शुद्ध ही है इसीप्रकार पर्याय भी शुद्ध हो गई ? कि नहीं। उसमें भी अभी कुछ शुद्धता है न कुछ अशुद्धता है। इसे व्यवहारनय कहा जाता है। - ऐसा मार्ग बापा !

ऐसा व्यवहारनय, विचित्र वर्णमाला समान होने से... उस सोने में विचित्रता होती न ? आँच देते देते, पीलापना पीलापना, मैलका भाग होता है, यह अनेक वर्णमाला

समान होने से जाना हुआ... देखा ? व्यवहारदेसिदा का अर्थ किया, व्यवहार उपदेश करनेलायक है - ऐसी जो भाषा यह तो पद्य में रखने के लिए है। पद्य का दूसरा अर्थ आता है न उसका अर्थात, परंतु उसका अर्थ यह है। कि व्यवहार उस समय जाना हुआ प्रयोजनवान है, यहाँ वजन है। अमृतचन्द्राचार्य ने व्यवहारदेसिदा की व्याख्या यह की है। आहाहा !

कुन्दकुन्दाचार्य ने व्यवहारदेसिदा में कहने का यह आशय है - ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में स्पष्ट कर दिया (है)। समझ में कुछ आया ? आहाहा ! गाय-भैंस के आंचल में दूध है यह बलशाली महिला निकाल सकती है, यह अंदर में है तब निकालती है। इसप्रकार इस भाषा में ये भाव यही है व्यवहारदेसिदा कहा अर्थात व्यवहार का उपदेश करना - ऐसा नहीं, परंतु उस समय अशुद्धता है, शुद्धता का आश्रय लिया है, उतना शुद्धता का अंश भी है। अशुद्धता भी है, उसे तो व्यवहारनय अर्थात पर्याय शुद्धपर्याय कि अशुद्ध यह व्यवहार, यह व्यवहार उस समय वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

अरे रे ! अर्थ भी उल्टा करते है, अपने को सम्मत हो - ऐसा अर्थ करना बापू - ऐसा चले नहीं। यह तो तीनलोक के नाथ, तीर्थंकर आहा ! जिसके गवाह हैं, गणधरों ने जिसे स्वीकारा है। इन्द्र जिसका अनुभव करते है सम्यग्दृष्टि आहाहा ! यह कहीं ऐसे वैसों का मार्ग नहीं। आहा !

श्रोता :- उन्हें - ऐसा कि जयचन्द्रजी को पता नहीं कि जाना हुआ प्रयोजनवान है ?

उत्तर :- भेदज्ञानी को, भेदज्ञान होने के बाद कुछ राग रह गया है, उन्हें जाना हुआ प्रयोजनवान है - यहाँ तो - ऐसा है। जिन्हें पूर्ण हो गया उन्हें कुछ है नहीं अब, उन्हें तो पूर्णता का वेदन है अतः शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा (जानना अर्थात जैसा सभी को जानते - ऐसा नयों को भी जानते है - ऐसा। - ऐसा नय का विषय है नय है न ? - ऐसा कुछ नहीं। यह तो एक सौ तेंतालीस गाथा में आ गया, श्रुतज्ञान के अवयवभूत निश्चय व्यवहार को यह लांघ गये है। एक सौ तेंतालीस गाथा। आहाहाहा ! भगवान को फिर श्रुतज्ञान में...

व्यवहार और निश्चय यह श्रुतज्ञान के भेद हैं। क्या कहा ? समझ में आया ? श्रुतज्ञान है वह प्रमाण है भावश्रुत हो ! तो प्रमाण है, यह द्रव्य को भी जाने पर्याय को भी जाने। अब इसका अवयव अर्थात भाग निश्चय और व्यवहार। निश्चय यह त्रिकाली को जानता है (एवं) व्यवहार वर्तमान पर्याय को जानता, तब व्यवहार वर्तमान पर्याय को जानता... निश्चय का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ अब इसकी पर्याय में अशुद्धता है नहीं ? उसे पर्याय में शुद्धता की पूर्णता नहीं तब अशुद्ध अपूर्ण पर्याय है कि

नहीं ? आहाहा ! इसके लिये यह बारहवीं गाथा कहीं (है)।

कि यह जो अपूर्ण शुद्धता है उसके साथ अशुद्धता है, उसे जाना हुआ प्रयोजनवान, जानना चाहिए। उसके ज्ञान में बराबर यह बात आना चाहिए। आहाहाहा ! समझ में आया ? पंडितजी ! आहाहा ! - ऐसा है... धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा (समझना) बापू ! यह तो परमात्मा का मार्ग है। आहाहा ! जिनको सौ इन्द्र नमन करते हैं। आहाहा ! असंख्य देवों का स्वामी इन्द्र, जिनकी सभा में इसप्रकार हाथ जोड़कर कुत्ते के बच्चे की तरह (बैठे हों) बापू ! यह मार्ग कैसा होगा भाई ?

यह कोई साधारण मार्ग नहीं प्रभु ! आहा ! और संत इस मार्ग की प्रसिद्धि करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य ! अमृतचन्द्राचार्य ! आहाहा ! जगत को... समाज में संतुलन रहेगा कि नहीं, इसकी कुछ परवाह संतों को नहीं। सत्य यह है और असत्य यह है। बैठे या न बैठे यह तुम्हारी जिम्मेदारी ! आहाहा !

अर्थात कोई - ऐसा कहे कि शुद्धनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। शुद्धनय तो केवली को नहीं, इसलिये नीचेवालों को शुद्ध है। इसलिये इसके नीचेवालों को शुद्ध नहीं उन्हें व्यवहार है - ऐसा नहीं समझ में आया ?

यहाँ तो पूर्णशुद्ध... ग्यारहवीं गाथा में कहा `ववहारोऽभूदत्थो' पर्याय मात्र गौण करके `नहीं - ऐसा कहकर, तो अब कुछ पर्याय में है ही नहीं ? यहाँ तो उसे गौण करके असत् कहा था। अब सम्यग्दर्शन हुआ, अंतर स्वरूप की दृष्टि हुई, तब अब पर्याय में कहीं अशुद्धता, पर्याय है कि नहीं ? नहीं - ऐसा कहा था, वह तो गौण करके कहा था। अब यहाँ पर्याय, वह सम्यग्दृष्टि को है कि नहीं ? आहाहाहा ! यह सम्यग्दर्शन की पर्याय, शुद्धता की अपूर्णता और अशुद्धता का अंश साथ में होता है। उसे यहाँ व्यवहार कहकर, जानने लायक है - ऐसा कहा है। आदर करने लायक है इससे लाभ है - ऐसा कहा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

ऐसा व्यवहारनय, विचित्रवर्णमाला समान, जाना हुआ उस समय प्रयोजनवान है। विशेष आयेगा। - प्रमाण वचन गुरुदेव !